अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
Peer Reviewed Refereed शोध पत्रिका
ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 01, (January-March 2025)

हिंदी संत साहित्य का विकास

संजय मिंज
शोधार्थी हिन्दी
विष्वविद्यालय षिक्षण विभाग
संत गहिरा गुरु विष्वविद्यालय अम्बिकापुर
सरगुजा (छ.ग.)

डॉ. राजकुमार उपाध्याय 'मणि'
शोध निर्देषक, हिन्दी
विष्वविद्यालय षिक्षण विभाग
संत गहिरा गुरु विष्वविद्यालय अम्बिकापुर
सरगुजा (छ.ग.)

संत साहित्य के विकास पर प्रकाष डालने से पूर्व संत साहित्य शब्द की सार्थकता को पूर्णरूपेण समझना अपेक्षित है। हिंदी साहित्य में सामान्यतः निर्गुण ब्रह्मा के उपासकों 'सूफियों को छोड़कर' अन्य को संत कहा जाता है और सगुण (साकार) रूप के उपासकों को भक्त कहा जाता है। यद्यपि यह भेद केवल व्यावहारिक है। वह धार्मिक साहित्य जो निर्गुण भक्तों द्वारा रचा जाता है उसे संत साहित्य कहा जाता है। वास्तविकता मे ंतो सभी भक्त संत थे और सभी संत भक्त थे। सभी का उद्देष्य लोकमंगल ही है चाहे संत हो अथवा भक्त लेकिन आधुनिक साहित्य में निर्गुण उपासकों को 'संत' के नाम से उद्बोधित किया जाने लगा है।

'संत' शब्द संस्कृत 'सत्' के प्रथमा का बहुवचन है। इसका अर्थ है सज्जन और धार्मिक व्यक्ति। हिन्दी साहित्य में साधुओं एवं सुधारकों को संत कहा जाता है। 'संत' शब्द का शाब्दिक अर्थ है – बुद्धिमान, पवित्रात्मा और परोपकारी व्यक्ति। इस अर्थ में भक्त, महात्मा सभी आते हैं।

डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल इस शब्द की व्युत्पत्ति शांत शब्द से मानते हैं और इसका अर्थ वैरागी एवं निवृत्ति मार्गी बताते हैं। आचार्य परषुराम चतुर्वेदी का कथन है कि – जिसने सत्रूपी परमतत्व का अनुभव कर लिया हो वह संत है। कबीरदास जी का कथन है कि –

निरवैरी, निहकामता, साई सैतीनेह।
विषया सूँ न्यारा रहै, संतन के अंग ऐह।।

तुलसीदास ने भी संतों के गुण और लक्षण इस प्रकार बताए हैं। जैसे –

सबकी ममतात्याग बटोरी।
मनपद मनहिं बांधवर डोरी।।

यद्यपि संत शब्द निर्गुणोपासक भक्त के लिए रूढ़ सा प्रतीत होता है अर्थात् संत साहित्य वह है जो निर्गुण पंथी कवियों द्वारा रचित हो और 'संत' वह है जो निर्गुणोपासक हो। लेकिन 'संत' शब्द का प्रयोग केवल निर्गुण विचारधारा के साधकों के लिए करना कितना समीचीन है इस पर भी यहाँ थोड़ा विचार कर लेना आवष्यक है। 'संत' शब्द का प्रयोग साधारणतया सभी प्रकार के भक्तों के लिए किया जा सकता है। इस शब्द का प्रयोग पहले के भक्त कवियों ने जिस प्रकार से किया है उससे स्पष्ट होता है कि इस शब्द का प्रयोग केवल निर्गुण भक्तों के लिए ही नहीं किया जाता था। तुलसीदास ने रामचरित माानस में संत–असंत के लक्षण बतलाए हैं। वहाँ इसका अर्थ विस्तृत है

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 01, (January-March 2025)

मुद मंगलमय संत समाजू,
जे जंग जंगम तीरथ राजू।

इसी प्रकार कुभनदास ने कहा है –

संतन को कहाँ सीकरी सों काम।

यदि उपरोक्त सभी कथनों पर विचार करें तो 'संत' शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में दिखाई देता है।

परषुराम चतुर्वेदी ने इस संकुचित अर्थ को ध्यान में रखकर इस शब्द का सूत्र ऋग्वेद में खोजा है। 'सुपर्ण विप्राः कवयो पचोभिरेंक सन्तं बहुधा कल्पर्यान्त' ऋग्वेद (10.114.5), इसके माध्यम से चतुर्वेदी जी ने बतलाया है कि 'सन्त' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में भी आया है।[1] आगे उन्होंने छांदोग्य उपनिषद् 'सदेव सोभ्यो दमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।' 'द्वितीय खंड' में भी संत शब्द के अर्थ को ढूढा जा सकता है।[2] संत लोग आदर्ष महापुरूष तथा पूर्णतः आत्मनिष्ठ होने के अतिरिक्त समाज में रहते हुए निस्वार्थ भाव से विष्वकल्याण के प्रवृत्त रहा करते हैं।[3] इस प्रकार स्पष्ट है कि संत शब्द का अर्थ अत्यंत व्यापक है।

हिंदी साहित्य का अवलोकन करें तो आचार्य रामचंद्र शुक्ल के समय से सगुण उपासकों को 'भक्त' तथा निगुर्णियों को 'संत' कहने का प्रचलन हो गया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार ''जिसे हम आजकल 'संत' साहित्य कहते हैं वस्तुतः निर्गुण भक्तिमार्ग का साहित्य है।''[4]

उपरोक्त विद्वानों की संत संबंधी अवधारणा का विवेचन करने के उपरांत कहा जा सकता है कि जिस व्यक्ति ने सत् रूपी परमात्मा की अनुभूति, अहंकार का त्याग करके की और परमतत्व का अनुभव कर लिया वही 'संत' कहलाते हैं।

आदि ग्रंथ वेणी के नाम पर एक पद आया है –

जिनि आतम ततुन चीनिमा।
सब फोकट धरम अबीनिआ।।
कहु वेणी गुरूमुखी धिआवै।
बिनु सतिगुर वाट न पावै।।[5]

1 चतुर्वेदी पं0 परषुराम, उत्तरी भारत की संत परंपरा (भूमिका), पृ0 – 4
2 चतुर्वेदी पं0 परषुराम, उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ0 – 4
3 चतुर्वेदी पं0 परषुराम, उत्तरी भारत की संत परंपरा (भूमिका), पृ0 – 4
4 बड़थ्वाल डॉ0 पीताम्बर दत्तः, योगप्रवाह उत्तराखण्ड में संत मत और संत साहित्य शीर्षक निबंध, पृ0 – 4
5 वेणीजी भगत, आदिग्रंथ : प्रभाती, पृ0 – 728

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 01, (January-March 2025)

गरीबदास जी की वाणी में संतों के लक्षण दृष्टवय है –

साईं सरीखे संत है, थाये मीन न मेख।[6]

उपरोक्त पंक्तियों के आधार पर हम कह सकते हैं कि निर्गुण उपासक केवल परमतत्व के निराकार रूप की उपासना करते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनको ज्ञानाश्रयी शाखा के तहत् रखा। इस शाखा के लोगों में ज्ञानमार्ग ही मुख्य था। ये लोग प्रेमतत्व को कम महत्व देते हैं। बहुत से भक्त कवियों ने भी ईष्वर के निराकार रूप की उपासना की है। तुलसीदास कहते हैं –

अमनहिुं सगुनहिं नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव संभव खेदा।।

यहाँ पर तुलसीदास भी स्पष्ट करते हैं कि ईष्वर परमतत्व है। जो भेद है वह साधना भेद है। सगुणवादी भक्त अवतार में विष्वास रखते थे। उनकी लीलाओं की उपासना करते थे। निर्गुण उपासक मूर्तिपूजा और अवतारवाद में कोई विष्वास नहीं करते थे। ''जब भक्त भगवान के असीम अचिंत्य–गुण–प्रकाष रूप की बात करता है तो वह ज्ञानेन्द्रियों के अनुभव की बात नहीं करता, मन द्वारा चिंतित वस्तु की बात नहीं करता और बुद्धि द्वारा विवेचित पदार्थ की बात नहीं करता। वह इन सबसे भिन्न और सबसे अलग किसी ऐसे तत्व की बात कहता है जिसे उसकी अंतरात्मा अनुभव करती है। वह सत्य है क्योंकि उसे भक्त सचमुच ही अनुभव करता है, लेकिन वह फिर भी ग्राहय नहीं है। न तो वह मन बुद्धि द्वारा ग्रहणीय है और न वाणी द्वारा प्रकाष्य। जब कभी वह भक्त के ह्रदय में प्रकट होता है। वही भक्त का भावग्रहीत रूप है।''[7]

स्पष्ट है कि हमेषा से ही साधक भगवान के दो रूपों का अनुभव करते एक निर्गुन निराकार के रूप में लेकिन ऐसी उपासना के लिए अत्यन्त उच्च कोटि के ज्ञान की आवष्यकता है। यदि कोई भी साधना की चरमानुभूति मे साक्षातकार करता है, तो वह बस प्रकाष देख पाता है। दूसरा है ईष्वर के साकार रूप की उपासना जिसमें भगवान के रूप, गुण आकार की उपासना करते हुए उसका दर्षन अपने ह्रदय में किया जाता है। यह तों भक्ति मार्ग की दो धाराओं की बात हुई लेकिन हम संत साहित्य की यहाँ बात कर रहे हैं तो उसी का विवेचन उचित है।

इस प्रकार संत साहित्य से तात्पर्य उस साहित्य से है जो निर्गुण मार्गी कवियों द्वारा रचित है। संत कवियों ने हिंदी साहित्य को विपुल कालजयी रचना प्रदान की। संतों की यह अमुतमयी देन है। हिंदी साहित्य के अधिकांष आलोचक दीर्घकाल तक संतों एवं संत साहित्य के यथार्थ रूप को नहीं जान सके। दूरदर्षिता के अभाव में उन कवियों की भाषा को सधुक्कड़ी, खिचड़ी उनके व्यक्तित्व को फक्कड़, काव्य को अकाव्य, भक्ति को ज्ञान, सहज साधना को हठयोग, छंद को तालालय तुक मात्रादि

6 गरीबदासजी की वाणी, (ब्रिगेडियर प्रेस, प्रयाग), पृ0 – 87
7 द्विवेदी आचार्य हजारी प्रसाद, मध्यकालीन धर्म साधना, (1956), पृ0 – 10–11

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 01, (January-March 2025)

आदि दोनों से युक्त कवि को समाज सुधारक, धर्मनेता आदि कहकर उनको काव्य सीमा से निकालने का प्रयास किया गया, परंतु आज स्थितियाँ और दृष्टि बदल गई हैं और संत साहित्य का विष्लेषणात्मक अध्ययन और अनुसंधान शुरू हो जाने से संत साहित्य को अंतराष्ट्रीय स्तर पर भी विस्तृत फलक मिला है। लंबे समय तक संत साहित्य के प्रति उपेक्षात्मक रवैये का एक कारण यह भी माना जा सकता है बानियों का हस्तलिखित तथा अस्त–व्यस्त रूप में महाधीषों तथा पंथानुयायियों के यहाँ पड़े रहना। संत काव्य का विवेचन अत्यंत सहज दृष्टि से होना चाहिए क्योंकि संतों का व्यक्तित्व, उनका योग, उनकी साधना सबकुछ अत्यंत सरल और सहज थी।

संत साहित्य का सृजन के पीछे निष्चित रूप से संतों का उद्देष्य विषुद्ध साहित्य रचना नहीं था। उन्होंने अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिए रचनाओं को रचा था। उनके साहित्य में यथार्थबोध था इसलिए उन्होंने अपनी बानियों में संगीत और काव्य का आलंबन लिया। वे जिज्ञासुओं द्वारा पूछे गए प्रत्येक प्रष्नों का उत्तर देते। वे चमत्कार प्रदर्षन की बातें नहीं करते थे। संतों की बानियों में यदि अलंकार और काव्य सौंदर्य के दर्षन किसी को होते हैं तो वह संयोग मात्र है। संतों की काव्य रचना में सर्वत्र सहजबोध है कहीं भी कृत्रिमता नहीं दिखाई देती है।

अधिकांष संत कवि अषिक्षित एवं अर्द्धषिक्षित थे। उनके पारिवारिक संस्कार ही उनकी बानियों में दिखाई देते थे। इसके अतिरिक्त संत्संगति, पूर्व संचित संस्कार एवं आवष्यकता से प्रेरित होकर काव्य रचना करते थे। कविता को ही वे अपने मनोभावों और अनुभूत सत्यों को अभिव्यक्त करने का माध्यम जानते थे। जो बिना कागज कलम का स्पर्ष किए विभिन्न रागों में धाराप्रवाह पदों की रचना कर सकता है उसे अकवि कैसे कहा जा सकता है। वे संत कवि काव्य शास्त्र के किसी भी नियम को नहीं मानते थे। वह उन्मुक्त रूप से अपने उल्लास को प्रवाहित करते थे।

कबीरदास की रचनाओं के संदर्भ में पं0 विष्वनाथ प्रसाद मिश्र का कथन है कि – ''कबीर की सब रचना काव्य के अन्तर्गत नहीं आती। योग साधना की प्रकिया, नाड़ी चक्र, सुरति निरति और ब्रह्मरंध का काव्य से क्या संबंध है जिस रचना में प्रेम तत्व पति–पत्नी, सेवक–सेव्य और पिता–पुत्र आदि संबंधों द्वारा राग संकेतित है, वही काव्य के भीतर रखी जा सकती है।''[8]

अब तक लगभग 500 संत कवियों की बानियाँ उपलब्ध हो सकी है। इनमें प्रबंध, मुक्तक और स्फुट सभी प्रकार की रचनाएँ हैं। इनमें सभी प्रकार के शास्त्रीय छंद हैं। कुछ बानियों में माधुर्य है। इतने राग और ताल इसमें है कि अच्छा से अच्छा संगीतज्ञ भी उसे याद नही ंकर सकता है। काव्यरूपों की विविधता की दृष्टि से भी संत साहित्य बड़ा ही समृद्ध है। रेख्ता, आरिल, झूलना, जकड़ी, सुखमनी, वाणी, प्रकाष, चौथ, संवाद, संदेष, दोहावली शब्द, साखी, शब्दावली, विनय मुष्टि विलास, सहस्त्रनाम, हजारा, शतक, पचासा, कहरा, कहरानामा, भक्तमाल, स्वरोदय, मुटका, सार, लीला, चरित,

8 मिश्र पं0 विष्वनाथ प्रसाद, हिंदी साहित्य का अतीत : पृ0 – 143

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 01, (January-March 2025)

पदार्थ वर्णन, पंचामृत, सागर, सुधा, दीपक, रामायण, मंगल, चतुर्मास, अस्तुति स्त्रोत, सौहिला, भाषा, रास, कुंडलिया, पुराण, विनोद, छुलास, प्रष्नोत्तरी, चूर्ण, मंजरी, चेतावनी, अखरावती, अलिफनामा, तरंगिणी, निधान, महिमा, परवाना और पत्र आदि शीर्षकों में से अधिकांष विषिष्ट काव्य रूप है जो संत काव्यधारा की निजी देन है।

इस धारा के प्रसिद्ध कवियों में कबीर, धरमदास, पीपा, रैदास, दादूदयाल, सुंदरदास, मलूकदास आदि का नाम लिया जाता है। इसके अतिरिक्त अनन्य, जम्भनाथ, हरिदास निरंजनी, रज्जव जी, बावरी साहब, यारी साहब दरिया (बिहार वाले), दरिया (मारवाड़ वाले), बुटला साहब, धरनीदास, सहजोबाई, दयाबाई, गुलाल साहब आदि का नाम लिया जाता है, जो संत, सुधारक और कवि हैं और कुछ इसके परवर्ती श्रृंगार काल है। इसके अतिरिक्त पंजाब के संत कवियों की भी एक श्रेणी है जिसके अंतर्गत गुरू नानक देव, गुरू अंगद, गुरू अर्जुन देव, गुरू गोविंद सिंह तथा शेख फरीद आदि का नाम आदर के साथ उद्धत किया जा सकता है। भक्तिकाल के कुछ प्रमुख संत कवियो का परिचय नीचे दिया जा रहा है।

इस परंपरा के श्रेष्ठ कवि कबीर स्वयं पढ़े–लिखे नहीं थे, वे अपने पद साखी, रमैनी आदि बोलते जाते थे और उनके षिष्य लिपिबद्ध करते थे। उनकी रचनाओं के विषय में किंवदन्ती है –

सहस छानबे और छवलाखा।
युग परमान रमैनी भाखा।।

यह अतिषयोक्ति हो सकती है। उनकी यत्र–तत्र विखरी रचनाओं का सर्वप्रथम संग्रह धर्मदास ने किया था, जिसका शीर्षक उन्होंने बीजक दिया था।[9] बीजक के तीन भाग साखी, सबद और रमैनी में साधारणतया सात–सात चौपाइयों के बाद एक दोहा कहा जाता है। कबीर ग्रंथावली में कबीर की साखियों को विभिन्न अंगों के अन्तर्गत विभाजित किए गए हैं। जैसे गुरू कौ अंग, निहकरमी पतिव्रता कौ अंग आदि। सबदी सबद या शब्द गेय पद है। इनमें भक्ति और आत्म समर्पण की भावना प्रकाषित हुई। कबीर साहित्य को इन्ही पदों ने साहित्यिक रूप प्रदान किया है। धरमदास कबीर के समकालीन और उनके प्रमुख षिष्य माने जाते हैं। यह विवादास्पद है। इनके नाम से प्रचलित ग्रंथों में सुख निधान विषेष प्रसिद्ध है।

रामानंद के 12 षिष्यों में कबीर के साथ धन्ना भगत का भी नाम लिया जाता है। ये राजस्थान के निवासी जाट थे। गुरू ग्रंथ साहिब में इनके चार पद संग्रहीत हैं। गंगारौन गढ़ के राजा पीपा जो पहले माँ दुर्गा के उपासक थे बाद में रामानंद से दीक्षित हो गए निर्गुण ब्रह्मा के उपासकों में उनका विषेष स्थान है। इनकी विचारधारा को प्रस्तुत पंक्तियों में देखा जा सकता है –

9 चतुर्वेदी पं0 परषुराम, उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ0 – 177

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 01, (January-March 2025)

जो ब्राह्मण्डै सोई पिण्डै, जो खोजै सो पावै।
पीपा प्रणवै परम ततुहै, सतगुरू होई लखावै।।[10]

रैदास (रविदास) का सहजता, सरलता और अनुभूति की गहनता की दृष्टि से संत काव्यों में विषेष स्थान माना जाता है। साधारणतया इनका समय संवत् 1445 –1575 के मध्य माना जाता है। ये कबीर की ही भाँति बहुश्रुत गृहस्थ परंतु वीतरागी थे। उनके पद इधर–उधर विखरे हुए मिलते हैं। गुरू ग्रंथ साहिब में इनके लगभग 40 पद संग्रहीत हैं। इनकी रचनाओं का एक संग्रह रैदास की बानी के नाम से प्रकाषित हो चुका है। रैदास अत्यंत सरल भक्त थे इसलिए उनकी बानियाँ भी अत्यंत सरल है।

तू मोहि देखैं देखूं, प्रीति परस्पर होई।
तू मोहि देखै, तोहि न देखौ
यहि मति बुद्धि सब खोई।।[11]

इनमें अपने आराध्य के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण और अनन्यता की भावना मिलती है।

दादूदयाल का जन्म संवत् 1601 में गुजरात के अहमदाबाद नामक स्थान में हुआ था और मृत्यु संवत् 1660 में जयपुर के पास हुई थी। इन्हें कुछ लोग ब्रह्मण तो कुछ लोग धुनिया मानते हैं। इनकी रचनाओं का संग्रह इनके दो षिष्य संतदास और हरड़दास ने हरड़े वाणी में किया है। रज्जब साहब ने अंग वधू के नाम से इनकी वाणी के नाम से किया था। काषी नागरी प्रचारिणी सभा ने भी इनकी रचनाओं का एक संग्रह प्रकाषित किया। जिसमें 2623 साखियाँ 445 पद हैं। बंगाल के बाउल संप्रदाय में दादू को बहुत सम्मान से देखा जाता है। संत काव्य के प्रसिद्ध मर्मज्ञ क्षिति मोहन सेन ने भी दादू की बानियों का एक संग्रह प्रकाषित किया है। इसके अतिरिक्त विभिन्न बानियों के अनेक संग्रह प्रकाषित हुए है। दादू अत्यंत सरल, स्नेही स्वभाव के भक्त संत थे।

सुंदरदास का जन्म संवत् 1653 में जयपुर के पास पीपा नामक स्थान में एक वैष्य परिवार में हुआ। 6 वर्ष की अवस्था में ही उन्हें दादूदयाल का षिष्य बना दिया गया। ये संत रज्जब के समकालीन थे और उन्हीं के साथ उन्होंने काषी में संस्कृत, साहित्य, दर्षन, व्याकरण आदि का अध्ययन किया था। काषी से लौटकर ये राजस्थान के फतेहपुर नामक ग्राम में आकर रहने लगे थे। वहाँ का नवाब इन्हें मानता था। कार्तिक सदी अष्टमी संवत् 1746 में इनका देहांत हुआ था। इनके द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या 42 बताई जाती है। जिसमें सुंदर विलास एवं ज्ञान समुद्र नामक ग्रंथ विषेष प्रसिद्ध है। सुंदरदास एक सफल कवि थे। उनकी काव्य संबंधी मान्यता निम्नवत है –

10 चतुर्वेदी पंडित परषुराम, संत काव्य (1997), पृ0 – 182
11 चतुर्वेदी पंडित परषुराम, संत काव्य (1997), पृ0 – 188

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 01, (January-March 2025)

बोलिए तो तब जब बौलिवे की बुद्धि होय,
ना ता मुख मौन गहि चुप होय रहिये।
जौरिये तो सतब जब जौरिवे की रीति जानै,
तुक छंद मरध अनूप जामै लहिए।।[12]

मलूकदास तुलसीदास के समकालीन थे। इनका जन्म वैषाख कृष्ण पंचमी संवत् 1631 में इलाहाबाद जिले में कड़ा नामक स्थान पर लाला सुंदरदास खत्री के यहाँ हुआ था। इनकी मृत्यु 108 वर्ष की अवस्था में संवत् 1729 में हुई थी। वे अपने समय के संत माने जाते थे और देष के विभिन्न भागों कड़ा, गुजरात, मुल्तान, पटना, नेपाल, काबुल आदि में इनकी गद्दियाँ स्थापित हुई थी। इनके चमत्कारों के संदर्भ में अनेक किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। इनकी कुल नौ रचनाएँ बताई जाती हैं – ज्ञानबोध, रतनखान, भक्त बच्छावली, भक्त वित्दावली, पुरूष विलास, दसरत्नग्रंथ, गुरूप्रताप, अलखबानी और रामावतार लीला। इन्होंने ब्रजभाषा और खड़ी बोली में कविता की है। परमतत्व की उपलब्धि की साधना का परम ध्येय रहा है।

संत साहित्य की दार्शनिक विचारधारा :–

संतों की रचनाओं में सबसे बड़ी संख्या योग और तंत्रों के पारिभाषिक शब्दों की है। अतएव निष्चित है कि योग और तंत्र संतों की दार्षनिक विचारधारा से संबंद्ध है। संतों की बाणियों, सबद, साखियों से प्रकट होता है कि वेदांती, बौद्धों, जैनियों, सूफी साधकों और इस्लामी लोगों से ज्यादा संत लोग तंत्र और योग को जाानते थे। माना जाता है कि इसका कारण था कि उन पर सिद्धों नाथों का प्रभाव था। ''योगियों की परंपरा बहुत प्राचीन काल से चली आती है और योग साधना का अस्तित्व किसी न किसी रूप में लगभग वैदिक युग से माना जा सकता है। उस काल के व्रात्य लोगों के विषय में कहा गया कि उनमें से एक रूद्र की उपासना करते थे तथा प्राणायाम को भी बहुत महत्व देते थे उनके ध्यान की साधना वर्तमान योगाभ्यास से बहुत कुछ मिलती–जुलती थी।''[13] नाथ योगी संप्रदाय के भी आदि प्रवर्तक 'आदिनाथ' भी षिव ही कहे जाते थे। यद्यपि नाथयोगी संप्रदाय के प्रारंभिक इतिहास का कुछ पता नहीं चलता बहुत लोगों का मानना है कि इसके मूल प्रर्वतक गोरखनाथ थे। उन्होंने ही कनफटा योगियों की परंपरा चलाई थी, जो हठयोग करते थे। एक जनश्रुति के अनुसार पौराणिक ऋषि मार्कण्डेय को हठयोग का प्रवर्तक माना जाता है।[14] संत लोग लगभग अनपढ़ थे लेकिन वे तंत्र, योग और उनकी अच्छाई–बुराई से ज्यादा परिचित थे। इस प्रकार संतों की मानसिक संरचना में तांत्रिक योग साधना का काफी प्रभाव रहा है।

12 शुक्ल आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ0 – 88
13 चतुर्वेदी पं0 परषुराम, उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ0 – 47
14 चतुर्वेदी पं0 परषुराम, उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ0 – 49

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 01, (January-March 2025)

संत लोग भी अधिकांषतः निम्न जाति से संबंध रखते थे और नाथ मत को मानने वाले भी सामाजिक मर्यादा की दृष्टि से निम्न जाति से थे। ''तांती, जुलाहे, गड़रिये, दर्जी और वयनजीवि जातियाँ साधारणतया नाथमत को मानने वाले गृहस्थों से मानी जाती है।''[15] संतों में अनेक पंथ, संप्रदाय भी विकसित हुए। ''संत साहित्य में संप्रदाय या पंथ निर्माण की प्रवृत्ति विषेष रूप से मध्य युग के पूर्वार्द्ध में दिखाई देती है। इस युग के संतों में संप्रदाय निर्माण करके अपने मतों को प्रचारित करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। यह प्रवृत्ति मध्य युग (उत्तरार्ध) में अपनी चरमावस्था तक पहुँच जाती है। एक प्रधान संप्रदाय या पंथ से अनेक सम्प्रदायों का पुनर्निर्माण हुआ। उसकी शाखाएँ–उपषाखाएँ भी बनी। लेकिन उनमें 25 संप्रदाय प्रमुख माने गए हैं। इनमें कुछ संप्रदाय सर्वाधिक व्यवस्थित एवं महत्वपूर्ण थे, जिनकी परंपरा आज भी सुव्यसस्थित रूप से चली आ रही है। ये संप्रदाय हैं कबीर पंथ, नानक पंथ, दादू पंथ। इसी तरह निरंजनी संप्रदाय भी है।''[16] इसी परंपरा में आगे चलकर संत मत का प्रचार–प्रसार हुआ, लेकिन सबसे प्रतिष्ठित संत कबीर ने अपने नाम से कोई पंथ नहीं चलाया था। कबीर की मृत्यु के बाद उनके अनुयायियों के द्वारा 'कबीर पंथ' अस्तित्व में आया। कबीर पंथ की 12 शाखाओं का उल्लेख मिलता है। इसकी कई उपषाखाएँ भी है इसके प्रमुख केंद्र वाराणसी, मगहर और धर्मदास द्वारा स्थापित केंद्र छत्तीसगढ़ में है। दादू ने परब्रह्मा सम्प्रदाय चलाया। गुरूनानक ने खालसा पंथ चलाया। उनके बाद उसके भी उपपंथ दिखाई देते हैं, उदासी संप्रदाय, मीना पंथ और रमैया पंथ। आगे चलकर खालसा पंथ दो भागों में बँटा, संत खालसा एवं बदई खालसा। इन्ही से आगे चलकर निर्मला संप्रदाय, नागधारी संप्रदाय, सुथराषाही, सेवापंथी, अकाली, भगतपंथी, गुलाबदासी, निरंकारी आदि संप्रदाय निर्मित हुए। परब्रह्मा संप्रदाय से ही निरंजनी सम्प्रदाय का जन्म हुआ। बाबरी पंथ भी बाबरी साहिबा द्वारा चलाया गया।

संतो पर सूफी दर्षन का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, वीरू साहब, यारी साहब, बूला साहब, गुलाल, भीखा पलटू आदि प्रसिद्ध संत हुए हैं।[17] लगभग 1700 से आगे अनेक संप्रदाय संगठित हुए। उनमें परसरामीय संप्रदाय, सीतारामीय संप्रदाय, बाबा लालीपंथी, धामी, सतनामी, धरनीष्वरी, दरियादासी, दरिया पंथ, षिवनारायणी, चरणदासी, गरीब पंथ, पानप पंथ, रामसनेही संप्रदाय एवं साहिब पंथ जैसे संतों के संप्रदायों का निर्माण हुआ। इनके विचार भी पूर्वतर्ती संतों की तरह थे।[18]

संत साहित्य के अधिक वृद्धि का एक कारण यह भी था कि उसमें सांप्रदायिक रचनाएँ भी बहुतायत शामिल की गई थी। संतों के संप्रदाय और पंथ जिनके नाम पर चलते थे उनके अनुयायी उन प्रर्वतकों को ईष्वर तुल्य मानते थे। पंथीय साहित्य का अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि जिनमें प्रवर्तकों को राम–कृष्ण से बढ़कर दिखाया गया। पहले संतों ने केवल अपने भावों को व्यक्त

15 सिंह राजदेव, संत साहित्य पुनर्मूल्यांकन, पृ0 – 45
16 दुबे डॉ0 राधेष्याप, संत साहित्य (औपनिषइ विचारधारा के परिवेष में), पृ0 – 40
17 दुबे डॉ0 राधेष्याप, संत साहित्य (औपनिषइ विचारधारा के परिवेष में), पृ0 – 40–41
18 दुबे डॉ0 राधेष्याप, संत साहित्य (औपनिषइ विचारधारा के परिवेष में), पृ0 – 42

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 01, (January-March 2025)

कर दिया था, लेकिन व्यवस्थित नहीं किया गया था। आगे के संतों ने अपनी रचनाओं को लिपिबद्ध किया। संतों की रूचि कथात्मक साहित्य के प्रति ज्यादा थी वे गेय पदों को कहते थे। पदों की रचना अपभ्रंष काल से ही बौद्धों के चर्यापद में दिखाई देते हैं। ''संत कवियों की ये रचनाएँ भी इसी प्रकार गेय पदों के रूप में स्वीकृत की जाती है और ये 'षब्द' या 'भजन' कहलाकर बहुधा गाई जाती है। अपने विषय की दृष्टि से अधिकतर ये उन भावों को व्यक्त करती है जो आत्मानुभूति की परिचायक है।''[19]

इस प्रकार सिद्ध होता है कि संतों पर अपनी पूर्व चिंतन पद्धतियों, साधना रूपों आदि का व्यापक प्रभाव रहा है, लेकिन दूरदर्षी संतों ने सभी धर्मों, संप्रदायों, मतों को आत्मसात् करने के बाद भी अपनी नवीन चिंतन परंपरा और उपासना पद्धति को एक ऐसा जनवादी रूप प्रदान किया, जो उस युग की सामान्य जनता द्वारा स्वीकार्य हुआ।

निष्कर्ष :–

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि संत साहित्य में युगीन संदर्भों के साथ ही वर्तमान प्रासंगिता विद्यमान है। संतों ने विभिन्न धर्मों एवं संप्रदायों को एक सूत्र में पिरोने का भी कार्य किया। अनेकता में एकता एवं राष्ट्रीय एकता में भी इनका योगदान है। धर्म निरपेक्ष राष्ट्र के निर्माण में संत साहित्य के योगदान को नकारा नहीं जा सकता। उनकी साधना पद्धति एवं उपासना पद्धति 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना से ओत प्रोत है। संत साहित्य 'मानव धर्म' की बात करता है और जाति, वर्गभेद से ऊपर उठकर आत्मा को ही सर्वोपरि मानता है।प्रत्येक जीव में ईष्वर का अंष मानकर दया, प्रेम, अहिंसा की सर्वोत्कृष्ट विचारधारा ने आज उसे अंतर्राष्ट्रीय मंच प्रदान किया है।

19 चतुर्वेदी परषुराम, संत काव्य, पृ0 – 17